आत्म–कथ्य

साहित्य का आधार जीवन होता है। इसी आधार पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी दीवार, छत, आंगन, घर बनते हैं, परन्तु बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी रहती है। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, और साहित्य मनुष्य की सृष्टि है। मनुष्य किसी न किसी खोज में जीता रहता है। किसी को परिवार में, वन–उपवन, ऐश्वर्य में, तो किसी को समाज की स्थिति, प्रस्थिति, वातावरण आदि में अपनी खोज का प्रारूप मिलता है। अपने देशकाल से प्रभावित होकर वह विचलित हो जाता है, और यह व्याकुलता आत्मा की तरह साहित्य का रूप लेती है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। वह सदा नया रहता है। घर के परिवेश का प्रभाव घर के हर व्यक्ति पर कुछ न कुछ तो पड़ता ही है, मगर साहित्य पर रूझान मेरे बाबूजी के कारण पड़ा। मेरा जन्म पश्चिम बंगाल मैं हुआ वहीं मुझसे पांच वर्ष बड़ी दीदी, और मेरे दो भाईयों का जन्म हुआ। दीदी बाकुंडा में अपने मामा के यहां पली–बढ़ी और विवाह तक वहीं रहीं। बाबूजी का जीवन संघर्षमय था, गांव में खेती किसानी के बीच, बाबूजी इंजीनियरिंग का आखिरी साल पढ़ नहीं पाए। बंगाली ब्राहमण में जन्म लेने के कारण परिवार धार्मिक था, हर प्रकार के तीज त्यौहार होते थे। श्रीदुर्गा पूजा, काली पूजा, सरस्वती, षष्ठी, महालय आदि विधि–विधान से पूजा–अर्चना होती थी, इसका प्रभाव बचपन से ही मेरे अंदर प्रवेश कर चुका था। बाबूजी झाटी पहाड़ी, हजारी बाग में नौकरी करते थे, कभी–कभी परिवार का साथ उन्हें मिलता था। लगभग छः वर्ष बाद 1953 में बाबूजी वहाँ से स्थानान्तरित होकर परासिया जिला–छिन्दवाड़ा में डब्ल्यू. सी. एल. के आफिस में हेड क्लर्क के पद पर आसीन हुए, तब हमारी शिक्षा प्रारंभ हुई। बाबूजी का अंग्रेजी, बांग्ला और सामान्य ज्ञान बहुत अधिक था। आफिस से घर आकर हमे कमरे में बैठाकर पूछा करते, आज क्या पढ़ा, कितना सीखा और किस–किस

की किस प्रकार मदद की। फिर कहते, इसे लिखो इस प्रकार यह हमारा दैनिक नियम था। रात्री में बाबूजी स्कूली किताब के अलावा अखबार की खबरें बताते और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान देते। हम बड़े हुए स्कूली शिक्षा शासकीय पेन्चव्हेली स्कूल में विज्ञान विषय के साथ हुई, वहां हमारे प्राचार्य श्री बख्शी जी, श्री तिवारी जी रहे, वे प्रार्थना स्थल पर सस्वर गान गाने के लिए मुझे आगे खड़े करते। तिवारी जी मेरे गाने की हमेशा प्रशंसा करते, और हर उत्सव–15 अगस्त, 26 जनवरी और वार्षिक स्नेह सम्मेलन में मुझे सांस्कृतिक प्रोग्राम में नृत्य और गान के लिए आगे करते। इस तरह मेरा आकर्षण संगीत के प्रति बढ़ा और वैसे भी बंगाली परिवार में नृत्य–गीत की प्रधानता रहती ही है। मेरे बाबूजी मेरी कुशाग्र बुद्धि को देखते हुए मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे। इसलिए मुझे एक वर्ष बी.एस.सी पास करने के लिए होम साइंस कॉलेज जबलपुर में दाखिला कराया। हॉस्टल का कड़ा अनुशासन, वहां का माहौल मुझे रास नहीं आया, मैं हर दिन उदास रहती, रोती, बाबूजी से कहती, "मुझे यहां नहीं रहना, मुझे आकर ले जायें।" हर बार बाबूजी हमें समझाते, परंतु मेरे रूदन ने अंततः मुझे बाबूजी परासिया ले आए। कॉलेज का सत्र आरंभ हुए 3 माह हो चुके थे, सीट भर चुकी थी, मायूस होकर मुझे बी.ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश लेना पड़ा। कला संकाय में अध्ययन करने में मुझे बहुत दिक्कतों का सामना करना पड़ा । बी.ए. में मेरे विषयों में राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त अनिवार्य विषयों में सामान्य हिन्दी और अंग्रेजी थे। राजनीति शास्त्र के मेरे गुरू आदरणीय श्री एच.एस.उप्पल थे जैसे–तैसे कुछ समझ पाती थी। परंतु अर्थशास्त्र के गुरूजी डॉ पी. आर. मिश्राजी थे, जिनकीभाषा पल्ले नहीं पड़ती थी, लगभग एक माह के बाद, मेरी उदासी, हताशा ने इस विषय को छोड़ने के लिए विवश किया। मैं लगभग रोते हुए प्राचार्य महोदय श्री आर. एल. यादव के पास पहुँची। उन्होंने मुझे अर्थशास्त्र का वैकल्पिक विषय अंग्रेजी साहित्य लेने का सुझाव दिया बस मुझे

मनोमुराद मिल गई। अंग्रेजी साहित्य प्राचार्य जी स्वयं एवं हमारे आदरणीय सर श्री एम. एम. शर्मा जी बहुत ही अच्छा पढ़ाते थे। मैंने शुरू में बताया था, अंग्रेजी भाषा पर मेरे बाबूजी ने बचपन से ही बहुत अच्छी शिक्षा दी थी, इसलिए इस विषय में अच्छे अंक मिलते थे । हिन्दी साहित्य के हमारे गुरूजी डा. एस. पाण्डेय और डा. राममूर्ति बहुत अच्छा पढ़ाते थे। मैंने 3 वर्ष शासकीय पेन्चव्हेली महाविद्यालय में गुजारे। 3 वर्ष मेरे जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों में से एक है। इस दौरान हर बार मेरे द्वारा प्रदर्शित सांस्कृतिक कार्यक्रम अमूल्य रहे। इसके बाद से संघर्षमय जीवन की शुरूआत हुई। बाबूजी चाहते थे मैं जबलपुर से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करूं। मेरा प्रवेश हवा बाग कॉलेज जबलपुर में हो गया, हॉस्टल जाने की सारी तैयारी हो चुकी थी, बस दूसरे दिन प्रातः जाना था। अब क्या था? शाम को प्राचार्यजी, डाराममूर्ति, डा.अरूण दुबे, डा. पाण्डेय सहित चार और प्राध्यापकगण मेरे घर आये और बाबूजी से कहने लगे, "आज ही हमारे महाविद्यालय में हिन्दी विषय में एम.ए. खोलने की स्वीकृति मिली है ।" वर्षों से सागर वि.वि. से इस हेतु मांग की जा रही थी, हम सभी चाहते हैं, पहले–नये सत्र में मेधावी छात्रा आपकी पुत्री बूला इस कॉलेज में हिन्दी विषय में एम. ए. करे। बाबूजी सकपका गए, अंग्रेजी में एम.ए. कराने के लिए सारी औपचारिकता के बाद नई प्रक्रिया ? मन मसोस कर अनिच्छा से, मिट्टी के माधव बाबूजी ने हामी भर दी। बाबूजी कभी किसी को उदास नहीं कर पाते थे। मैंने अपने मन को अंग्रेजी की जगह हिन्दी में ढ़ाल लिया। 2 वर्ष तक पढ़ाई के अलावा साहित्य सृजन भी चलता रहा। इसकी प्रेरणा मुझे स्कूली जीवन से ही बाबूजी और डॉ. राममूर्ति जी से मिली। मैं अपने गुरू, भाई, मार्गप्रदर्शक डॉ. राममूर्ति जी के प्रति कृत–कृत हूँ। बचपन से ही उन्होंने कविता लिखने से आरंभ करने को कहा। कभी फूल, पत्ते, ओस, रात्री, सूरज, प्रातः, हवा और झरने विषय पर मेरी कविता को बढ़ावा दिया। कभी भूलों को सुधारा, तो कभी डांटा भी। धीरे–धीरे मेरी

छोटी–बड़ी कविताएं अनेक पत्र–पत्रिका में छपती रहीं। एम. ए. के प्रथम वर्ष में सागर वि.वि. में टॉप रैंकिंग हासिल की, इस आधार पर मेरे पास कन्या महाविद्यालय बालाघाट से एक दिन पत्र मिला, मैं फाइनल एक्ज़ाम के बाद उस महाविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नौकरी करूं। मेरे बाबूजी एक बार जान ही चुके थे, जब डॉक्टरी पढ़ाई की इच्छा से मेरा प्रवेश शास होम साईंस कॉलेज जबलपुर में प्रवेश के बाद मैं घर से दूर नहीं रह पाई, दूसरा नियति ने जबलपुर में अंग्रेजी में एम.ए. न करने की स्थिति ने जाने नहीं दिया, और अब अकेली बालाघाट में कैसे रह पायेगी, कई बार विचार के बाद, बाबूजी ने माँ सरस्वती की इच्छा जान, बालाघाट में नौकरी के लिए हामी भी दी। मेरी एक सहेली माया बावसे को भी ऐसा प्रस्ताव बालाघाट से मिला। हम दोनों को साथ मिला, चूंकि यह महा वि अशासकीय था, प्रारंभ में अच्छे मेद्यावी व्याख्याता को रखना था, खैर कुछ भी हो। यहाँ भी मेरा अध्यापन के साथ–साथ साहित्यिक रचनात्मक लेखन कार्य चलता रहा। नौकरी के 3 वर्ष के बाद मेरा विवाह हुआ। 3 वर्ष बाद मेरी बेटी ने मेरे घ ार परासिया में माँ के संभाल–सुरक्षा में बड़कुही अस्पताल में जन्म लिया। पुत्री चीनू प्रारंभ से माँ – मासी लाड़ प्यार से पली । घर में पहली बेटी के जन्म से मामा–मासी की लाड़ली थी। मैं माह में एक बार यहां बेटी के पास आती थी। शनिवार की शाम 5 बजे की बस से रात्री 2 बजे यहां पहुंचती थी। मेरे पति यहीं पर इलेक्टांनिक्स के व्यवसाय में थे, रात्री में मुझे लेने बस स्टेण्ड पहुंचते थे। मेरा मातृत्व पुत्री को देखने के लिए व्याकुल हो उठता था। 6 माह की बच्ची को छोड़ कर ढाई सौ किमी. दूर रहना, बहुत दुखदायी था, रविवार को दिनभर बच्ची के साथ, पुनः रात्री 8 बजे बस से रवाना होती। और सुबह 6 बजे बालाघाट पहुंच कर अपने कॉलेज की

व्यवस्था में व्यस्त हो जाती। ये सारी अनुभूतियां, मेरे रचना संसार की बुनियाद थी। संघर्षमय जीवन के बीच मैं ने पी.एच.डी. उपाधी

"प्रगतिशील कथा साहित्य में अमृतराय के कथा साहित्य का विशेष अनुशीलन" विषय पर प्राप्त की , इस दौरान मुझे बार–बार परासिया, सागर जाना पड़ता था। कई बार साक्षात्कार हेतु अमृतराय जी के घर इलाहबाद भी गई। अमृतराय जी के अमूल्य प्रेरणा को भुलाया नहीं जा सकता। मेरे पति और बेटी चीनू के साथ हम जब भी इलाहबाद में अमृतराय जी के घर गए, भोजन किए बिना नहीं आए। दो बार तो हम उनके घर रूके। विशाल अध्ययन कक्ष को देखकर मैंने सोचा मैं भी कभी अपना ग्रंथालय बनाउंगी। जो आज सच हो गया। हाँ, तो अमृतराय जी कैसे थे ? इस पर लिखूं तो एक पुस्तक बन ही जाएगी, वह बन गई, मेरी उपाधी से प्रकाशित पुस्तक ''अमृत की कलम से'' की प्राप्ती से बालाघाट महा वि. के शासनाधीन होने के बाद शा. पेंचव्हेली महा वि. में मेरा स्थानांतरण हो गया। अब सब कुछ ठीक चलने लगा। बालाघाट में रहते हुए अनेक व्यस्तता के बावजूद समाजशास्त्र में एम.ए. किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि समाज से ही साहित्य है, समाज से ही जीवन है। जीवन में साहित्य की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। जीवन केवल जीना, खाना, घूमना, सोना, जागना और मर जाना नहीं है। ये तो पशुओं का ज्ञान है। जीवन में नकारात्मक और सकारात्मक दो प्रकार की प्रवृत्तियां काम करती है, जो समाज से ग्रहण किया जाता है। कलम हाथ में लेते ही हमारे सिर पर बड़ी भारी जिम्मेदारियां आ जाती हैं। समाज में क्या है ? प्रवृत्ति, परिवार, नियम आदि के विस्तृत जानकारी हमें समाजशास्त्र से प्राप्त होती है। इसलिए मैंने भाषा शास्त्र और समाज शास्त्र को जीवन के अभिन्न अंग माने।

बालाघाट में रहते हुए मेरे प्रेरणास्त्रोत अमृतराय पर शोध कार्य किया। सागर वि.वि. के आचार्य डा. बलभद्र तिवारी के निर्देशन में सुप्रिया पब्लिकेशन से शोध पुस्तक **''अमृत की कलम से''** को प्रकाशित कराया, यह मेरी पहली प्रकाशित पुस्तक है। इसका विमोचन भी अमृतराय के वरद हस्त से हुआ।

परासिया महा वि. में जो मेरे गुरू थे, जिन्होंने मुझे लायक बनाया, वे मेरे सहयोगी हो गए। अध्यापन कार्य के अतिरिक्त समय में मेरी अंगुलियां पृष्ठों पर शब्द उकेरती रहती। न जाने कितने अनुभवों, दर्द को, समाज में पनपते अत्याचारों को कविता में समेटती रही। घर परिवार की छोटी से छोटी बात को महत्वपूर्ण समझा। मेरे ज्ञानी शिक्षक पूज्य बाबूजी ने एक दिन कहा जो उचित हो वही करो, अपेक्षा को अधिकार और हक न समझो। बस मुझे मेरी कविता संग्रह का नाम मिल गया। शैवाल प्रकाशन गोरखपुर से प्रकाशित कविता संग्रह **''अपेक्षाएं हक नहीं होती''** बहुत चर्चित और प्रशंसित हुई। अपने समय का सदुपयोग करते हुए, आलोचनात्मक पक्ष को उभारा, संस्मरणों को याद किया और शब्दबद्ध चिन्हों को पुस्तक रूप प्रदान किया। अपने समय को खूब देखा, और साहित्य में भर दिया। इस तरह मेरी तीसरी पुस्तक **अपने समय के साहित्य पर सोचते हुए** ''रचना प्रकाशन'' जयपुर से प्रकाशित हुई इसके प्रकाशन में जयपुर वि. वि के पूर्व कुलपति महान कवि, आलोचक, निबंधकार, डा. विश्वभरनाथ उपाध्याय की बहुत मदद मिली। पुस्तक के विषय में जो यथार्थ चित्रण किया, वह पुस्तक में है।

बांग्ला भाषी होने के कारण मुझे बांग्ला साहित्य में विशेष रूचि थी। कर्म भाषा हिन्दी होने से पुस्तकें एवं सभी रचनाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई। बांग्ला साहित्य में मैं विशेषज्ञ तो नहीं थी, परंतु अंतर्मन में ऐसा कुछ था जिसे कलमबद्ध कर बांग्ला साहित्य से आ हिन्दी भाषा–भाषीयों का परिचय कराने के उद्देश्य से एक पुस्तक लिखने की योजना थी। इस हेतु मैं पश्चिम बंगाल के लगभग हर

बड़े साहित्कारों की जानकारी हेतु–शोध प्रवृत्ति –सह कोलकाता, जमशेदपुर, वर्धमान, दुर्गापुर, शांतिनिकेतन, बोलपुर, मेदनीपुर के अतिरिक्त जहां से भी कुछ सामग्री मिलती थी, उनका अध्ययन किया। अन्यान्य क्षेत्रों जैसे झारखण्ड, बिहार, पटना, रांची, दिल्ली, इलाहबाद, वाराणसी आदि के ग्रंथालय का उपयोग किया। अनेक श्रमसाध्य कर्म के बाद पन्नेदर पन्नों को भरा, फाड़ा और पुनर्लेखन किया– तब कहीं मैंने **"बांग्ला साहित्य सृष्टि और दृष्टि"** के नाम से रचना प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित कराया, इस पुस्तक में मैंने बांग्ला साहित्य के आदिकाल से वर्तमान तक का इतिहास लिखा, पुस्तक दीर्घ रूप की सीमा को देखते हुए सभी महत्वपूर्ण साहित्यकारों का चित्रण किया।

समाज में रहते हुए न कितने अनुभव, लगाव, अलगाव, रिश्ते, विडम्बना, याचना, अत्याचार, यादें हमारे इर्द – गिर्द हमसे लिपटे होते है। बचपन की सीढ़ी को लांघते हुए, इस स्थिति में जब अपने को पाया तो परिवर्तन ही परिवर्तन देखे। परिवार में आज की स्थिति से हर कोई परिचित है। आज भी संयुक्त परिवार है, परन्तु रिश्तों की अहमियत में अन्तर है। पहले भी परिवार में नाना–नानी, दादा–दादी, चाचा–चाची, माँ–पिता, भाई–बहन रहते थे। आज भी सब रिश्ते तो है, परन्तु रिश्तों की पहचान खो गयी है। पहले सबकी दुनिया एक ही घर में बिना तनाव के होती थी परन्तु आज दादा–दादी, नाना–नानी, माँ–पिता, को घर में एक कोना मिला है, या वृद्धाश्रम ही उनका घर है। जिसने उंगली पकड़कर चलना सिखाया, अब वही छड़ी बनने के बदले धक्का देता है। लोगो की आँखों का पानी सूख गया है। क्या बच्चे, युवा कभी वृद्धावस्था की दहलीज पर नहीं पहुँचेंगे ? परिवार का परिवार से, समाज से बाहर मन से मन का, मानव, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, जल, हवा सभी से हमारा रिश्ता है, सभी का निर्वाह जरुरी है। रिश्तों की अहमियत जीवन की सर्वोपरि आकांक्षा है। इसे नकारा नहीं जा सकता, रिश्तों

में दूरी कितनी पीड़ादायक है, इसे एक अनुभवी ही जानता है। इन्ही सब विचारों ने मेरी **''अहमियत''** कविता संग्रह की सृजना की। इस संग्रह की कमोबेश कविताओं में रिश्तों की अहमियत को ध्यान में रखा गया है। पार्वती प्रकाशन इन्दौर से प्रकाशित यह पुस्तक पाठकों के हृदय में मार्मिक संवेदना उत्पन्न कर सके, तभी ''अहमियत'' की अहमियत सामने प्रकट होगी।

विविध विषयो पर अपनी जानकारी साझा करने की अकुलाहट में **साहित्य : विचार और अनुभूति** की रचना हुई जिसमे सृजनात्मकता की एक मुकम्मल पहचान दिखाई देती है

प्रत्येक देश की संस्कृति, सभ्यता एवं दर्शन के मूल तत्व उस देश की जलवायु, प्राकृतिक दशा, उपज आदि भौतिक परिस्थितियों के अनुसार निर्मित होते हैं और इन सबका संकलित प्रभाव वहाँ के साहित्यिकों एवं समीक्षकों पर पड़ता है। इस प्रकार किसी देश के साहित्य की समीक्षा–दृष्टि मूलतः उस देश के बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार की विशेषताओं से उत्पन्न होती है। समीक्षा का अंतिम साध्य मात्र साहित्य नहीं, जीवन भी है, उसकी प्रगति, विकास, व्याख्या, खोजबीन, दूर दृष्टि समीक्षक को समीक्षा दृष्टि प्रदान करती है।

''समीक्षा के आइने से खंड 1' समीक्षा संकलन में कुल उनचालीस रचनाओं की समीक्षाएँ है। मैंने अपने समीक्ष्य लेखन में परिमार्जन एवं पुनरुत्थान का समर्थन किया है, किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर मैंने कुछ भी नहीं लिखा। समीक्षा संकलन की रचना का प्रयत्न मैंने एक प्रकार का ज्ञान–यज्ञ समझकर किया है।

इस प्रकार पार्वती प्रकाशन इन्दौर द्वारा फरवरी 2016 में **''समीक्षा के आइने से खंड 1''** पुस्तक प्रकाशित हुई।

समाज को बदलने में साहित्य की अहम भूमिका होती है। इसके लिए आवश्यक है कि समाज के सच को सामने लाया जाए।

जिस समाज में जितनी अधिक असमानता होगी, वहाँ उतनी अधिक अव्यवस्था और आक्रोश होगा, आर्थिक असमानता सर्वहारा को दयनीय बनाती है।

स्वस्थ परिवर्तन एक स्वाभाविक परिणति है। कई बार यथार्थ की वैज्ञानिक पड़ताल किए बिना रचनाकर्म समकालीन नहीं हो पाता। ऐसी रचना जिनके पास यह वैज्ञानिक दृष्टि नहीं होती, मुख्य धारा से कट जाती है। यथार्थ की जाँच–परख हमेशा ही रचनाकार की क्षमता और उनकी दृष्टि पर निर्भर करती है। लेखक अपनी सृजन भूमि से हटकर कुछ नया करने का प्रयास करता है, तो पुरानापन हटकर अपने आप परिवर्तन का रूप धारण कर लेता है। हर रचनाकार की कोशिश हाती है कि वह समाज को कुछ नया दे, पहले से हटकर कुछ अलग, कुछ ऐसा, जो किसी दूसरे ने न किया हो। अभ्यास, सोच और चिन्तन से नये सृजन की संभावना बनती है। साहित्य की संस्कृति का एक पक्ष सृजन–परिदृश्य होता है, तो दूसरे पक्ष में अभिव्यक्ति कला होती है।

साहित्य प्रथमतः और अन्ततः एक भाषिक संरचना है, यह मानवीय अभिव्यक्ति का संश्लिष्ट और उत्कृष्ट–रूप है, जो मानव संवेदना की तह तक पहुँचने का काम करती है, साथ ही समाज के साथ रूबरू होने और विचारों तक जाने का काम करती है।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रंग प्रकाशन इन्दौर द्वारा मेरी **''शोध सृजन परिदृश्य''** पुस्तक प्रकाशित हुई, इसमें दलित विमर्श और बांग्ला साहित्य को प्राथमिकता दी गई है।

समय गतिशील है परिवर्तनशील है बलवान है समय की महती शक्ति के आगे कुछ भी नहीं है उसकी अपार शक्तियों मै ऐसे तत्व छिपे है जो दिखाई नहीं देते अपना काम करके निश्चिंत भाव से घूमता रहता है संपूर्ण ब्रह्माण्ड समय से भयभीत है समय

को कोई रोक नहीं सकता पूर्व मे सूर्य का उदय और पश्चिम मे अस्त होना समयानुसार होता है।

समय को मुख्य बिंदु में रखते हुए जितनी भी कविताएं **समय प्रवाह** कविता संकलन में है सब पर समय की छाँव है कुछ कविताएं समय पर ही लिखी गयी है चाहे भवितव्य श्रवण शीलता , नाम , समय चक्र, अब और नहीं , ज़िंदगी , रिश्ते , समकालीन , नज़रअंदाज़ , अनंत विस्तार आदि कविताओं को दार्शिनिक की आँख से पढ़ा जाये तो कमोबेश समय का चमत्कार ही दिखेगा। कुछ होता है , कुछ होने वाला है , कुछ होगा सब होगा या नहीं सब समय देवता ही तय करेगा।

आगे बढ़ने के लिए एक.एक सीढ़ी से चढ़ना होता है उसी तरह सृजन या रचना पहली सीढ़ी से होते हुए दूसरी सीढ़ी आलोचना है अर्थात रचना की पुनर्रचना ही आलोचना है उक्त आलोचना सृजन रचना की अहमन्यता को ध्यान मे रखते हुए मेरी इस पुस्तक "**आलोचना के बहाने**" मे साहित्य सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों जैसे साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता क्यों है उसकी सीमाएं और सम्भावनाओ पर प्रकाश डाला गया है

तुलनात्मक अनुशीलन मे औपन्यासिक कथा शिल्प की दृष्टि से प्रेमचंद और शरतचंद्र के उपन्यासो मे गरीबी नारी की दयनीय दशा के साथ प्रगतिवादी विचारोतक घटना आदि जो भी बंगाल मे पाई जाती है इन विभिन्न समस्याओ का विस्तृत उल्लेख **हिंदी और बांग्ला समशील उपंन्यासकारो का तुलनात्मक अध्ययन** मे है।

कोई कवि न अपने पाठक चुन सकता हैं न श्रोता दशको से कविता मुख्यत: पढे जाने के लिये लिखी जाती हैं सुने जाने के लिये नहीण प्रस्तुत पुस्तक **गुंजन सप्तक नौ**

कवियो की कविताओ का संग्रह हैं जिनमें मेरी भी कविताएं हैं

चूँकि जीवन स्वयं सत्य है संस्मरण उनका हिस्सा है तो हमारे यात्रा वृत्तांत भी सत्य कथा ही होते है इसी में पांडेचेरी की अलोकिक यात्रा का वर्णन है साक्षात्कार भी हमसे ही सम्बंधित हमारी ही सत्य वस्तु है भले आकार में लघु या वृद्ध ही क्यों न हो वास्तव मे साहित्य विस्वास और विश्लेषण की वस्तु है लेखक

उन्हें अपनी चेतना और सामर्थ्य के अनुसार जमा धरण करवाता है उसे संस्मरण, जीवनी, व्यंग निबंध के, यात्रा या बालकथा, सत्य कथा आदि किसी भी रूप में अपनी बात कहता है यह सत्य कथा

के लिए लागु नहीं होता है यह लघु या दीर्घ कुछ भी होता है इस तरह संस्मरण आत्मकथा वृत्तांत या साक्षात्कार की भी अलग पहचान होती है उक्त सभी तत्थ्य "**समकालीन साहित्य विविध स्वर**" रंग प्रकाशन इंदौर में है।

अंतर्मन में निहित विचार भावनाओ का उद्देलन कविता को जन्म देता है अभिव्यक्ति अंतर्मन की पहचान होती है समाज परिस्थिति और रचनाकार की स्वयं की दृष्टि सम्पन्नता ही उसका पाथेय बनती है कविता अंतर्मन के बीज से उपजी वह कोपल है जो अपने साथ कइयों को विचलित करने का सामर्थ्य रखती है उपर्युक्त भाव विचारो को दृष्टिगत रखते हुए मैंने अपने अंतर्मन से निकले शब्दों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश की है जो **"अन्तर्द्वंद्व"** कविता संकलन मे है।

रचनाकार स्वयं के समान संस्कार और रुचिवालो को धयान मे रखकर लिखेए यह आवश्यक नहीं कि वह सार्वभौमिकता को ही चुनता है अपने संस्कार , अनुभव , संवेदना आदि की रस्सी पकड़कर लिखता है न उससे कम न

उससे ज्यादा वह केवल और केवल उसे पाठक के लिए छोड़ देता है कि उसे अपने ढंग से चाहे जैसा समझे चाहे जैसा अनुभव करे चाहे जैसी व्याख्या ओर आलोचना करे आगे बढ़ने के लिए एक एक सीढ़ी से चढ़ना होता है उसी तरह सृजन या रचना पहली सीढ़ी से होते हुए दूसरी सीढ़ी समीक्षा है मतलब रचना की पुनर्रचना ही समीक्षा है इस तरह **"समीक्षा के आईने से खंड ३"** पार्वती प्रकाशन इंदौर से प्रकाशित हुई ।

वर्तमान मे ३ पुस्तकें बोधि प्रकाशन जयपुर , अयन प्रकाशन दिल्ली और हिंदी परिवार से प्रकाशित होने वाली है जो जल्दी छपेगी ।

अपना जीवन मैंने माँ सरस्वती को अर्पित किया है इसका फल मुझे द सन्डे इन्डियन नोएडा से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्रिका से मिला। सितम्बर 2011 में 21वीं सदी की एक सौ ग्यारह श्रेष्ठ महिला साहित्यकारों में स्थान मिला यह मेरे जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धी है। आकाशवाणी से 20 वर्षों से बाल कथा, कवितायें, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत शोध परक प्रज्ञा–वार्तायें, साक्षात्कार, समीक्षाएं प्रसारित हो रही हैं। विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओ में निरंतर साहित्य के विभिन्न विद्याओं में रचनाएं प्रकाशित होती है। लगभग 30 वर्षों से देश के विभिन्न संस्थानों में आयोजित संगोष्ठियों में मेरी पूर्ण भागीदारी रही है, एवं अभी भी आयोजनों में आलेख वाचन हेतु सम्मिलित होना जारी है। प्रतिष्ठित संस्थानों द्वारा मुझे अनेकों सम्मान प्रशस्ती पत्र प्राप्त हुए हैं।

महाविद्यालयो में नौकरी करते, पैसा कमाये, संचय किया, और अब उसका सदुपयोग भी किया–यह सच है कि पैसा जीवन में कितना भी जरूरी हो, जो तो है ही, पर उसके ऊपर कुछ चीजें हैं जिनके ऊपर पैसे को महत्व नहीं दिया जा सकता, मनुष्यता, मनुष्य

का आत्मसम्मान और मनुष्य का सृजन समाज का जो ढाँचा बनता है, उसकी रचना के पीछे कोई न कोई सोच और दृष्टि अवश्य होती है, उससे उस समाज की मानसिकता पता चलती है। प्रारंभ में यह सोच लचली होती है, लेकिन धीरे–धीरे यह संकीर्ण और जड़

होती है। सामाजिक बदलाव भी तभी आता है, जब हम में से कुछ के विचार बदलते हैं, सोच बदलती है, क्योंकि समाज हम ही से बना है, यह भी तय है कि बदलाव की शुरूआत के लिए साहस की जरूरत होती है। जीवन और जीवन के अनुभव– सम्बन्ध तो वही होते हैं, बस उन्हें देखने का तरीका बदलता है। यही स्थिति मेरी रही है मैं कोई समाज से अलग नहीं। प्रारंभ में जब आसपास की दुनिया में और मेरे जीवन में जो घट रहा था, उसकी ओर ध्यान जाना शुरू हो गया था, और मन में कई ख्याल और प्रश्न उठने लगे थे, जीवन की परतें जितनी खुलती गयीं, जीवन की जटिलताएं, विडम्बनाएं उतनी ही उभरती गयीं। सदैव अन्याय का विरोध,

जरूरतमन्दों की मदद, खुद का जोखिम में डालकर आगे बढ़ते रहना और पीठ में छुरा भोंकने वालों पर भी प्रतिकार न करना, सच्चाई का साथ देना, जैसी सद्गुण विकृतियों ने मुझे संघर्ष ही दिया। इन सद्गुणों को विकृतियां इसलिए कह रही हूँ, क्योंकि मेरे इस स्वभाव ने मुझे पीड़ा और दर्द ही दिए हैं। इसमें अपने – पराए सबने बदले में भावनात्मक एवं मानसिक शोषण के अलावा कुछ नहीं दिया। सभी ने राजनीति के पांसे फेंके। कभी रिश्तों की आड़ में, तो कभी अपने कठिन समय की दुहाई देकर सिर्फ अपने स्वार्थ ही पूरे किए है। अब तो मुझे लगता है वर्तमान परिवेश में मुझ जैसे लोग अनफिट हैं। शोषण को देखते हुए चुप बैठना मैंने कभी नहीं चाहा, मेरी रचनाओं में चेतना, विमर्श, समीक्षा विशेषतया इसलिए

आ पाए हैं। कविताएँ संघर्ष की विदूषताओं , वेदनाओं, परिवेश में अनुभूत तथ्यों की परिकल्पना को डालने की मात्र कोशिश की गयी है।

मेरी अभिलाषा है, जीवन पर्यन्त साहित्य को सर – आँखों पर बैठाकर जीवन यात्रा पर चलती रहूँ। मेरे शब्द, कलम और पृष्ठ कैनवास मेरा साथ दे, ईश्वर से सदा यही कामना करती रहूँगी। शब्दों की शिल्पी बन, शब्द ब्रवम की उपासना, अर्चना, साधना, वंदना, आराधना, प्रार्थना, अभ्यर्थना करती रहूँ। '

'माँ शारदे मुझे शक्ति दें।'' .....

सहित्य सेवा हेतु सदैव समर्पित

डॉ. बूला कार..